सचित्र लोक-कथा माला

तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ

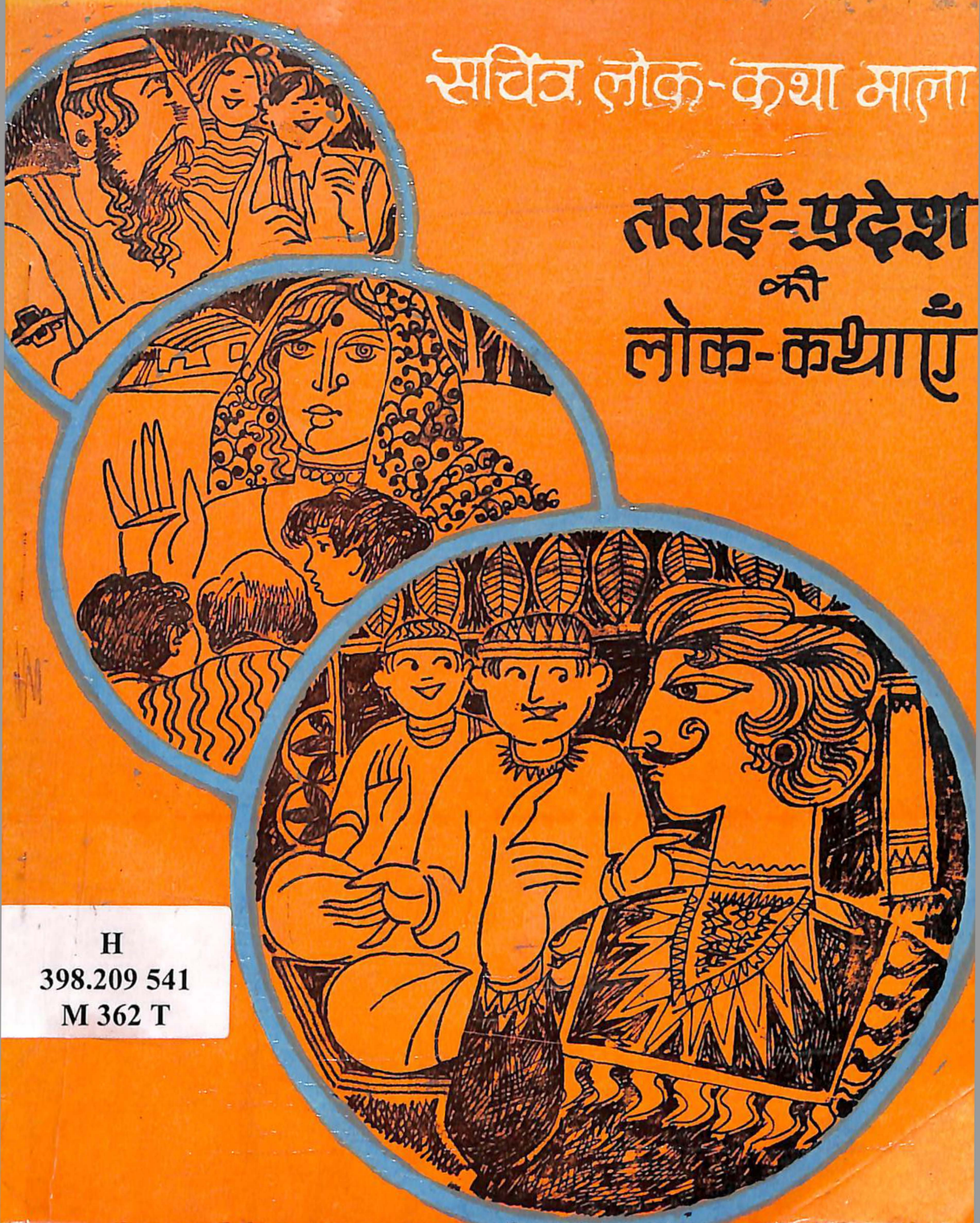

H
398.209 541
M 362 T

तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ

शैलेश मटियानी

1990

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली

©आत्माराम एण्ड संस

शाखा
17, अशोक मार्ग, लखनऊ

H
398.209541
M362T

Library IIAS, Shimla
H 398.209541 M 362 T
00080961

80961
29/3/93
SIMLA.

प्रकाशक
आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली- 110006

संस्करण: 1990

मूल्य : 10.00

मुद्रक
नव प्रभात प्रिंटिग प्रेस
बलवीर नगर, शाहदरा

ये लोक-कथाएँ

ये लोक-कथाएँ काव्य-कथाएँ हैं। जिस प्रकार उत्तर-भारत के कई जिलों में आल्हा-ऊदल की काव्य-कथाएँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार ये काव्य-कथाएँ भी।

ये वीर-गाथाएँ हैं। लोक-कथन और मान्यताओं को देखते हुए, कुछ ऐसा आभास अवश्य मिलता है, ये वीर हुए अवश्य हैं और इनकी ऐतिहासिकता निर्मूल नहीं, अतिशयोक्तिपूर्ण भले ही हो।

ऐसा मानने के कारण हैं। लोक-कथाओं का जो स्वरूप आज प्रचलित है, वह परिवर्द्धित अवश्य है। प्रत्येक लोक-गायक ने उसमें अपने कथन-कौशल का उपयोग अवश्य किया है—पर विशुद्ध कल्पना-जन्य ये कथाएँ हैं नहीं। इन कथाओं की 'उत्पत्ति' किस काल में हुई, कब से ये गाई जाने लगीं—इसके लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पर, अनुमानतः ऐसा माना जा सकता है, रामायण या महाभारत के पात्रों के सम्बन्ध में जो संत-कथाएँ प्रचलित हैं, वे तत्कालीन वर्तमान पीढ़ी और परम्परा के बहुत बाद की नहीं हो सकतीं। स्पष्ट शब्दों में, रामायण और महाभारत-काल के लोगों से ही इन कथाओं का कथन-पुनर्कथन प्रारम्भ हो गया था।

इन कथाओं के स्वरूप में, मूल कथा-वस्तु में परिवर्द्धन अवश्य हुआ। पर, जिस प्रकार विभिन्न धाराओं के संयोग से विशाल बनी नदी का 'अपना उद्गम' भी अवश्य ही होता है—वैसे ही, इन लोक-कथाओं की मूल कथा-वस्तु भी प्रामाणिक मानी जानी चाहिए।

गाँवों के जन-जीवन में, जहाँ विज्ञान-जन्य मनोरंजन-साधनों का अभी अभाव ही है, इन लोक-कथाओं का विशेष महत्व है।

दिन-भर के शारीरिक श्रम से थके, किसान जब घर लौटते हैं, तब उन्हें अपना तन-मन भारी और उदास-सा लगता है। थकान और अन्यमनस्कता से बोझिल वातावरण में, सहसा ही, किसान-परिवार का मन कथा-संगीत के लिए विकल हो उठता है।

और जब लोक-वाद्यों की गूंज-गमक के साथ, लोक-गायक कोई रसीली और ओजपूर्ण काव्य-कथा शुरू करता है, सभी एकचित्त हो रसास्वादन में लग जाते हैं।

किसान-परिवार सिनेमा-संस्कृति से परिचित श्रोता-द्रष्टा नहीं होता। ये वे श्रोता होते हैं, जो कभी मेले या शहर में विजयभट्ट की 'रामराज्य' या 'रामबाण' फिल्म देखने का अवसर पाते हैं, तो राम-सीता को चढ़ाने के लिए पुष्प-अक्षत और भेंट (ताँबे के पैसे) अपने आँचल में सहेज ले

जाने वाली श्रद्धालु धार्मिक किसान-गृहणियाँ इनमें प्रमुख होती हैं।

लोक-कथाओं के करुण रस के प्रसंगों में आँसू बहाते किसान-महिलाओं और वीर-रस के प्रसंग में भुजाएँ फड़काते, मूँछों पर ताव देते श्रमदेवता किसानों को उस समय देखते ही बनता है। उस समय, अधुना छल-कपट और स्नेहहीन जीवन के विपरीत, हमें उस मानव के दर्शन होते हैं जिसका हृदय, विज्ञान की प्रचंडता के युग में भी, प्यार और आत्मीयता की निर्मल भावना से मानसरोवर-सा लहरता, गेहूँ-जौ की बाली-सा फहरता है।

उस समय लगता है, कि ओह, मानव बड़ा प्यारा है। उसका धर्म, उसकी परम्पराएँ, उसकी सभ्यता, उसका स्वरूप——उसका सब-कुछ बड़ा प्यारा है।

ऐसे वातावरण में वैमनस्य और युद्ध की विभीषिका उत्पन्न नहीं होती——क्योंकि यहाँ घृणा नहीं होती, प्यार होता है। मनुष्यता होती है। और जहाँ भी आज युद्ध और घृणा का, शोषण और लूट का वातावरण है, उसका कारण यही है कि वहाँ मानव की 'सहज-सरल' मानवता का लोप हो गया है।

× × × ×

इन लोक-कथाओं के लिए, मैं पांडेतोली-निवासी कुमायूँ के रस-सिद्ध लोक-गायक जोगाराम का आभारी हूँ। संध्या के नौ बजे से रात्रि के तीन बजे पर्यन्त, बड़ी तन्मयता के साथ, जोगाराम ने ये लोक-कथाएँ सुनाईं। लोक-वाद्य 'हुड़क' की गमक के साथ, गा-गाकर। जोगाराम समय पूछते रहे। जब एक बज चुका था, मैंने कहा——"साढ़े दस हो गए हैं!" वह कंधा हिलाकर बोले——"बेर छ।" अर्थात् अभी अधिक समय नहीं हुआ है।

सभी लोक-कथाओं की कथा-वस्तु ज्यों-की-त्यों है। मेरा अपना कुछ है, तो कथा-वस्तु के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग करने का प्रयास, बस।

आशा है, पाठकों को ये लोक-कथाएँ भाएँगी अवश्य। आभारी हूँ, भाई श्रीकृष्ण जी का, प्रेरणा के लिए और श्रीरामलाल जी पुरी का प्रकाशन के लिए।

——शैलेश मटियानी

क्रम

१. सूर्य कँवल १
२. विदू-सिदू रमौल और कालू वजीर २२
३. योग-संयोग ३०

पाँडेतोली-निवासी,
कुमायूँ के रस-सिद्ध लोक-गायक,
जोगाराम पाटियावाले
को

तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ

१

सूर्य कँवल

संध्या की वेला ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की डालों पर से उतर कर, धरती के आँगन आ गई है ! इस सलोनी-सुहानी संध्या के आने से क्या होता है ?

नीड़ों के पंछी अपने-अपने नीड़ों को लौटने लगते हैं। जिस पंछी के पास नीड़ नहीं, वह अपनी चोंच में घास का तिनका दाबे लौटता है। जिस पंछी के थके परों को सहारा देनी वाली, कंठ को बोल, हिया को प्यार देने वाली संगिनी नहीं है, वह सघन वनांचलों

में घूम-घूमकर, मीठी बानी बोल, मन की दुविधा खोल, किसी सुबैना-सुपंखी संगिनी को ढूँढ लाता है। और जिस पंछी के नीड़ में चहकते-फुदकते बच्चे हैं, वह अपनी चोंच में (अपने गाँव के पधान के आँगन में धूप में डाले हुए) धान भरके घोंसले को लौटता है।

इस रसवंती संध्या में—जिसकी जीवन-संगिनी का घाघरा-आँगड़ा फट के फटफटान, लटक के लुड़झुड़ान हो गया है, वह द्यौत-भट की दालें और चौंरी-प्यौंरी भैंसों का घी लेकर शहर को जाता है कि लाला की दुकान से काल गाड़े का बारह पाट का घाघरा, कोटीन का तीन जेब वाला आँगड़ा लेगा—और जब पाँव सारते, कंधा बदलते उसे यह रसवंती संध्या भेंद लेती है, तो वह पड़ाव के दुकानदार के आँगन में बोझ उतार, पाँव पसार देता है। देव-पितरों का नाम लेके, पकाने को चूल्हा, रहने को जगह माँगता है।

संध्या (जो बाँज-फल्याँट वृक्षों की चोटी से, किसी निपूते शिकारी की गोली लगे पंछी-सी, नीचे लुढ़क पड़ी है) जब घिरती है—तब रतनुवा-जतनुवा ग्वाले अपनी झौली-नौली गायों और चनुली-विनुली बकरियों को हाँकते, जौल मुरली की रन्ध्रों में हिंवार-सिंवार के गीत गुंजाते घर को लौटते हैं कि सघन-शीतल वनांचलों में घास काटती बहू-बेटियाँ 'द, दिज्यू! द, बैणा!' कहते हुए, उरोजों के मध्य आ रही लटी को पीठ की ओर फेंकती हैं, कि बकरियों के गले की रमकन-धमकन घण्टियाँ रुनझुनाने लगी हैं, कि हमें घर लौटने को देर हो चली है कि सास के सिर पर सौत बस जाए, मायके के कुत्ते तक को गालियाँ देगी!

यह साँझ की वेला घिर आई है कि घर-घर, द्वार-द्वार पंचनाम देवों के नाम का दीपक जल गया है।

इस संध्या-वेला में, दिन-भर उड़े पंछी, दिन-भर चले यात्री और हल जोत खेत बोकर थके किसान विश्राम करते हैं।

सौभाग्यवन्ती-पुत्रवन्ती गृहिणियाँ देव-पितरों के नाम का चौमुखिया दीपक[१]

१. चारों दिशाओं की ओर, चार बातियों वाला दीपक।

जलाती हैं कि निर्धन धन, निपूती पूत माँगती हैं ! जिस बहू को अपने आगे की सुध-बुध है, सास को दूध का गिलास, ससुर को तम्बाकू की चिलम देती है ।

इस मंगलकारिणी संध्या में, जिस घर में देव-नाम का कीर्तन, पितर नाम का सुमिरण सुनाई पड़ेगा, वहाँ लक्ष्मी-सरस्वती मैया सिर को छत्र, पीठ को आधार बनेंगी ।

कि इस दशों दिशा घूम आई, धरती-आकाश झूम आई संध्या के आगमन से मुरझाए पात लहरने, चलते मुसाफिर ठहरने लगे हैं ।

थके को विश्राम देने वाली, देव-पितरों का नाम लेने वाली इस संध्या में--भरपूर भंडार घर के स्वामी क्या करते हैं ?

परदेशी को वास, भूखे को गास देते हैं । अपनी गाड़[1] (नदी) का रमौलिया बुलाते हैं । पात में पिठ्याँ-अक्षत, थाली में खीर, गड़ुए में नीर देते हैं ।

ऐसे घर के स्वामी के भंडार में चूहे अन्न न उजाड़ें, बिल्लियाँ दही को हाँडियाँ न फोड़ें कि ऐसे घर-स्वामी के घर में घी-सा परोसने, शक्कर-सा बोलने वाली बहू आए कि सोने की थालियाँ, चाँदी के लोटे हों । उनमें पुत्रवन्तियाँ सुग्रास भोजन परसें और घर के पुरखे खाएँ, बच्चों के लिए थाली में छोड़ आएँ !

इस संध्या-वेला के विदा हो जाने पर, जब रात का प्रथम-प्रहर लगता है रमौलिया[2] क्या करता है ?

'हुड़क'[3] की पाग खिसकाता और हिंवार[4] को ठसकाता है कि संध्या की नौबत[5] बजाकर, देव-पितरों की वन्दना करता है !

--कि यह जो कथा-गीतों की रात घिर आई है, ऊँचे हिमालय, गहरे समुद्र में और भगवान् श्रीकृष्ण की नगरी द्वारिका में--रमौलिया हाथ जोड़ता है, नयन मूँदता है, द्वारिका के देव श्रीकृष्ण की वन्दना करता है ।

और, रमौलिया वंदना करता है, माता रुक्मिणी, पिता वसुदेव की । यशोदा

१. एक छोटी-सी नदी का तटवर्ती इलाका । २. 'रमौल' (लोक-काव्य-कथा) गाने वाला । ३. लोक-वाद्य ४. रमौलिया के साथ आलाप भरने वाला । ५. नौ प्रकार की बजतें (धुनें) ।

मैया, नंदराजा की। राधा की, राधा के गोकुल की। रानी रुक्मिणी की, कि जो मुँह का बोल, नयन का सैन नहीं सह पाती हैं !

रमौलिया वंदना करता है कि राजकुमारों के शिरमौर कुँवर सूर्य कँवल की, कि जो भाभियों के तानों को सुनते ही पाँव-तले की मिट्टी आकाश को उछालते और डाली का फूल धरती को गिराते हैं।

रमौलिया कथा कहता है, कि हे घर के स्वामी, घर की बहू-बेटियो, आँख मूँद लो, कान खोल लो--रमौलिया कथा कहता है, कि माता देवकी के लाड़ले, पिता वसुदेव के प्यारे कुँवर सूर्य कँवल की···

तुकि दुंग-तुकि दुंग-तुकि दुंग--

हो, ओ, ओ ! हो, ओ, ओ !! हो, ओ, ओ !!!

साँझ सुहानी द्वारिका नगरी के द्वार-द्वार का दीपक, थाली-थाली का पुष्प-नैवेद्य बनने लगी थी। सुलक्षणा बहुएँ पंचामृत के कलश में गाई का दूध, सुवर्ण-रजत की थाली में जाई का फूल रखने लगी थीं।

महारानी रुक्मिणी भी रत्नजटित थाली लिए, अपनी सदाबहार वाटिका में चम्पा-जूही की कलियाँ बीनने चलीं कि देखती क्या हैं--फूल-वाटिका में बाल सूर्य की-सी कांति वाले, कुँवर सूर्य कँवल जड़ाऊ टोकरी में चम्पा का फूल, जूही की कली बीन रहे हैं।

रानी रुक्मिणी ने देखा कि सूर्य कँवल ने कलियों के नाम पर फूल, फूलों के नाम पर पात भी बीन लिए हैं !···उनके रतनारे नयनों के घोंसले में रोष के पंछी ने अंडे दे दिए कि रानी रुक्मिणी ने लटी नोचना, बोल बोलना शुरू कर दिया--"वा, हो लाड़ले देवरिया ! तुम्हारे हाथ की अँगुलियों को काँटो ने बेधा भी नहीं कि तुमने कलियों के नाम पर फूल, फूलों के नाम पर पात तोड़ दिए हैं, कि डाल-डाल को निर्वंश, लता-लता को निपूती कर दिया है !···एहो, अनाड़ी देवरिया ! गाई का गोबर न हुआ, तुम्हारा मस्तिष्क हो गया। घाट का घसकना पत्थर न हुआ, तुम्हारा हृदय ही हो गया। अनाड़ी-अन्यायी देवर हो, तुम्हें आगे की सुध, पीछे का ध्यान नहीं है। झाड़

डाल के झगड़ा, पत्थर डाल के फिसाद करते हो। भोर की वेला, पनघट जाती हूँ, तो मेरे घड़े में भरा पानी अपने उस अभागी घोड़े को पिला देते हो ! मंदिर जाती हूँ, तो भगवान् श्री कृष्ण के नाम की आरती करते समय, सियार की बोली बोलते हो !···आखेट को जाती हूँ, हिरनों की खाल पहना के गीदड़ों को वन में छोड़ देते हो ! हाट-बजार जाती हूँ, तो सोनारों के यहाँ पीतल के गहने सोने की कलई करके रखवा देते हो !··· साँझ की वेला, चम्पा-जूही की कलियाँ बीनने आती हूँ, तो डालों पर फूल के नाम पर पात नहीं रहने देते हो!···रात को, मखमल की सेज बिछाती हूँ, रेशम का ओढ़ना धरती हूँ कि वहाँ किरमड़-घिंघारू[1] के काँटे बिखेर आते हो !··· ए,हो अन्यायी देवर, जंगल में एक-एक लकट्टू बानर होता है--वह न हुआ, इस देव-नगरी द्वारिका में तुम ही हुए !···अब मैं चम्पा-जूही की कलियों के बिना, कैसे देव-पितरों के नाम की पुष्पांजलि चढ़ाऊँगी ? कैसे भगवान् कृष्ण के लिए हार, अपने केशों के लिए वेणी गूंथूंगी ?"

कुंवर सूर्य कँवल किलक हँस दिए, पुलक बोले--"कल द्वारिका-नरेश की सेवा में इन्द्रप्रस्थ के नटों ने नौटंकी दिखाई थी ! भाभी रानी रुक्मि, उसमें जो नटिनी थी, ठीक ऐसे ही बोलती, ऐसे ही गुस्सा करती थी !···खैर, तुम मेरी बड़ी और लाड़ली भाभी हो, मेरे बीने फूल ले जाओ ! देव-पितरों को चढ़ाओ, पर भैया कृष्ण के नाम का हार आज मेरे गले में पहना देना ! देखो, मेरी भाभी मैना, देवर-भाभी की मजाक शुक-सारंगी (शुक की प्रेमिका) की जोड़ी होती है ! हँसी का बोलना, ठट्ठा का खेलना --देवर-भाभी का जोड़ा तो सतयुग से चला आया है !···एहो, मेरी भाभी ! भैया कृष्ण क्या हुए, गोकुल-वृन्दावन का कोई मूर्ख ग्वाला हो गया कि जो शिशुपाल के घर के बरतन घिसने, चक्की पीसने को जा रही दासी को उठा लाए, और द्वारिका की पटरानी बना दिया ! मेरी प्यारी भाभी रुक्मिणी, मैं गोबर के मस्तिष्क का हूँ, पाथर का हूँ--जैसा भी हूँ, अपनी द्वारिका का राजा हूँ। तुम्हारे बाप के घर पानी पीने, रोटी खाने में आया नहीं !···तुम्हीं मेरी द्वारिका में, मेरी रसोई का खाने, मेरे दर्जी का सिया, सोनार का बनाया पहनने आई हो !···एहो, मेरी भाभी रुक्मिणी'

१. दो वन्य, काँटेदार पौधे।

भला मैं कैसे अन्यायी हुआ ? तुम्हारे गाँव का पधान मैंने जूतियों-सी पीट-पीटकर, मारा नहीं, तुम्हारे भाई रुक्म को पागल कुत्तों से नुचवाया नहीं !···एहो, भाभी मेरी रुक्मिणी, देवर लगता हूँ, मजाक करता हूँ। कहीं कुछ बुरा न मानना !···तुम्हारे खेतों का हलियर नहीं हूँ, तुम्हारे गोठ का बैल नहीं हूँ, देव-नगरी द्वारिका का राजवंशी कुंवर हूँ ! तुमने क्या समझ के ऊँचे बोल बोले, अपनी जात बताई ?···एहो, भाभी रुक्मिणी, अब तुम्हारे सिर के बाल फूलने लगे हैं, वेणी गूँथकर क्या करोगी ? मेरी भाभी रुक्मिणी, तुम्हारे कृष्णज्यू लाठी टेकने, कम देखने वाले हो गए हैं, भला, उनके गले में हार पहनाने से अब जवानी थोड़े लौटेगी !···बड़ी भाभी मेरी, तुम बड़े ओछे कुल की हो ! होली के दिन हैं कि देवर लगता हूँ, ठट्ठा करता हूँ——कहीं तुम कुछ बुरा न मान लेना !

रानी रुक्मिणी की छाती फट गई कि देवर सूर्य कँवल ने वज्र-सा मार दिया है। पलक उठाती हैं, नागिन-सी फुफकारती हैं, पलक गिराती हैं, नाखूनों से धरती चीरती हैं——"इस द्वारिका में तो सियार का बोलना, काँस का फूलना हो जाए। इस द्वारिका के महलों के पहरेदार, मन्दिरों के पुजारी मर जाएँ। यहाँ भगवान् कृष्ण तो नाम के राजा हैं। असल में राज तो यहाँ हमारी सास के इन बिना सींग के साँडों, ओछा बोलने वाले भाँडों का है। ओ, रे सूर्य कँवल देवरिया, मुझे क्या बाएँ वचन सुनाता, दाहिने सैन दिखाता है !···ऐसा ही द्वारिका का राजवंशी, माता देवकी का लाड़ला है, तो हुणदेश से हूण-कन्या, राजकुमारी हिमरथी को द्वारिका लेके आओगे। उसके यौवन का पानी सूखा नहीं है। जूड़े के बाल फूले नहीं हैं। सात फेरे जूड़ा बाँधती है, सात वेणियाँ गूँथती है, फिर भी उसकी लटी आँगन बुहारती है, चरन पखारती है !···एहो घमण्डी देवरिया, तुम्हारी जवानी का फूल, पागल हाथी के पाँव-तले आ जाए ! माई के लाल हो, तो हुण-देश जाना। वहीं रह जाना; लौटने न पाना !··· एहो देवर, होली के दिन हैं ! भाभी लगती हूँ, सो हँसी करती हूँ। तुम्हारे गले की जनेऊ पत्थर पर जाए, बिना हिमरथी को लाए, इस देव-नगरी द्वारिका में अपना मुँह मत दिखाना !"

भाभी रुक्मिणी के बाण-समान वचन सुनने थे कि कुँवर सूर्य कँवल की दिशा और, दशा और हो गई।

बोले--"रानी भाभी रुक्मिणी, हूँ मैं श्रीकृष्ण भैया की पीठ का आधार भाई, देवकी मैया का लाड़ला बेटा और द्वारिका नगरी का राजवंशी कुँवर--हूण-कन्या हिम-रथी का डोला लेके ही द्वारिका आऊँगा; नहीं तो, मुँह नहीं दिखाऊँगा, द्वारिका के द्वारपालों को ! हे, रानी भाभी रुक्मिणी, तुम इस द्वारिका नगरी में बिना देवरों के होके, पाँव पसार के सोना, हाथ पसार के खाना ! ···तुम्हें जनम देने वाले का मुँह न दिखाई पड़े, कि एहो भाभी, जो तुम जैसी दोछनिया बेटी[1] को पाल-पोसकर, द्वारिका के राजवंशियों के लिए काँटों की बाड़ बना दी ! ···अच्छा, रानी भाभी, अब हिमरथी के साथ ही इस वाटिका में फूल बीनने आऊँगा !"

रानी रुक्मिणी बोलीं--"घमण्डी देवर हो, हिमरथी के सिर न जाएँ इस वाटिका के फूल-पात कि उसका काला चरेवा (मंगल-सूत्र) पत्थर पर रह जाए कि वह तुम्हारी जवानी को वैरी बन जाए ! एहो, घमण्डी देवरिया, द्वारिका की महा-रानी को कुवचन कहके जा रहे हो, जिस दिशा से जाओगे, उसी दिशा रह जाना। तुम्हें प्यास लगे तो पानी, भूख लगे तो अन्न न मिले। तुम थक जाओ, तो कहीं छाया विश्राम न मिले ! हे परमेश्वर ब्रह्मा-विष्णु हो, इस घमण्डी देवर को भली बाट, लगी खाट न देना···!"

× × × ×

सूर्य कँवल घर लौटे। अपना कम्बोज-देशी श्यामकर्ण घोड़ा तैयार किया। सुवर्ण की जीन, जड़ाऊ लगाम पहनाई।

तभी माता देवकी बोलीं--"लाड़ले कँवल, आज किसी काल के न्यौते दुश्मन ने तुम्हें ललकारा है कि या किसी बिना बाप की बेटी की आँखों में चील बस गया है, जो तुम घोड़े पर सवार होकर जाने के लिए, मुझसे आज्ञा भी नहीं ले रहे ? बेटा, तू तो बिना अपनी माँ की 'हाँ' सुने पानी भी नहीं पीता था, घी का निवाला नहीं

१. दुर्वचन कहने वाली लड़की।

खाता था––आज क्या बात है ?''

उत्तर में, सूर्य कँवल ने सारी कथा कह सुनाई और कहा कि अब उनका द्वारिका रुकना, गंगा का हरिद्वार से ऊपर ही रुकना है !

मन-मन के आँसू बहाती, क्रन्दन करती, आँचल फैलाती––माता देवकी बोलीं ––''बेटा कँवल हो, सात बेटों वाली माँ हूँ, पर मेरी आँख की उजियाली, मेरी गोद की हरियाली तो तू ही है। तू न जा, लाड़ले ! तेरे लिए एक सहस्र राजकुमारियाँ मँगाऊँगी। उन सबका नाम हिमरथी ही रख दूँगी।''

सूर्य कँवल बोले––''माँ, कहती तो तुम ठीक हो ! पर, यदि भाई ने कुवचन कहे होते, द्वारिका का राज बँटवा लेता, दुश्मन ने कहे होते, चीर-चार, फाड़ पाँच करता ! भाभी का दोछाया हुआ (वचन-बाण का बेधा हुआ) कैसे इस द्वारिका में मुँह दिखाऊँगा ?''

माता देवकी लाख मनाती रहीं, पर कँवल न माने। अन्त में, माँ देवकी के इस आग्रह पर कि ''बेटा, परदेश में तू सुख से है, या दुःख से––मैं कैसे जानूँगी ?'' ––सूर्य कँवल ने एक दूध-कटोरा भरा और उसमें एक गुलाब का फूल रख दिया और कहा––''जिस दिन यह गुलाब का फूल मुरझा जाए, समझ लेना, मैं विपत्ति में हूँ ! जिस दिन, इस दूध का रक्त बन जाए, समझ लेना, धरती से उठ गया हूँ, कैलाश-वासी हो गया हूँ।''

× × × ×

दिन-राति एक करते, नदी-पर्वत लाँघते, सूर्य कँवल शौक्याण-देश पहुँच।

हाएरे, शौक्याण देश में वज्र गिर जाए, काँस फूल जाए। पहला ही घर कुमति शौक्याणी का पड़ा। कुमित शौक्याणी ने सूर्य कँवल को देखा, ताने[1] तोड़ने लगी, लटी नोचनी लगी कि ऐसा रूप का रुपैला कौन देव आज शौक्याण-देश की धरती पर आ गया है !...

सूर्य कँवल सात दिन, सात रात के भूखे-प्यासे थे। कुमति शौक्याणी के पास

१. कपड़ों में लगी हुई डोटियाँ, जो बटनों की जगह इस्तेमाल की जाती थीं।

गए और पीने को पानी माँगा ! हे भगवान्, कुमति शौक्याणी का लड़िया (लाड़ला) मर जाए--अस्सी बरस की बुढ़िया, क्या वाणी बोलने लगी--"एहो परदेशी, गात के नौणिया, पिण्ड के मखमलिया[1] हो ! इस जंगली देश में कौन तुम्हारा रिश्ते-नाते का, कौन तुम्हारा आगे-पीछे का है, जो निश्चिंत हो फिर रहे हो !···पहले अपनी जात बताओ, वंश बताओ, तब पानी पिलाऊँगी !···"

सूर्य कँवल ने अपनी सच्ची कहानी बता दी। तब कुमति शौक्याणी हँसकर बोली--"एहो परदेशी, तुम्हारा भावी ने 'बड़ा मजाक' किया है। परदेशी हो, वह हिमरथी तो मेरी ही बड़ी बहिन है। इस चैत से उसे सौ बरस पूरे हो गए हैं। उसकी लटी जरूर लम्बी है, पर उसमें तो, जैसे वन में हिरन-पंछी रहते हैं--ऐसे ही जूँ पड़ी हुई हैं। उसके मुँह में एक दाँत भी नहीं है। आँख से अंधी, कान से बहरी है। नाक उसका चक्की के पाट-सा चपटा, होंठ बेलन-से मोटे हैं। एहो परदेशी, में उसकी छोटी बहिन हूँ। मुझे अपनी द्वारिका ले चलो। मेरा नाम ही हिमरथी रख लेना। तुम्हारी द्वारिका में हमारी राम-सिया की-सी जोड़ी राज रचाएगी, मंगल करेगी।"

सूर्य कँवल हँस पड़े--"एहो सुबैना शौक्याणी, मैं तो हिमरथी को ही ले जाने आया हूँ, उसे ही ले जाऊँगा, चाहे कैसी भी हो। हाँ, हिमरथी को लाने के बाद तुम्हें भी ले जाऊँगा साथ में। हमारे महावत का हाथी बहुत बूढ़ा हो गया है, उस हाथी के साथ तुम्हारी राम-सिया की-सी जोड़ी खूब राज रचाएगी, खूब मंगल करेगी !"

कुमति शौक्याणी कँवल की बात सुन जल के कोयला, कोयले की राख बन गई। बोली--"परदेशी हो, बड़ी मीठी बानी बोलते हो, तुम्हें मीठा पानी पिलाऊँगी।" और अन्दर जाकर, जहर मिला के पानी ले आई। उस प्यास की विकलता के क्षणों में, सूर्य कँवल ने सारा पानी पी लिया—और उधर द्वारिका में दूध का कटोरा रक्त का बन गया !

× × ×

माँ देवकी विलाप करती, भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँची और कहा कि "सूर्य

---

१. नवनीत-सा शरीर, मखमल-सा मुलायम मुँह वाले।

कँवल जो दूध का कटोरा दे गया था, वह रक्त का हो गया है। शायद, मेरा लड़ला सूर्य वैरियों को भारी हो गया है! ···और श्रीकृष्ण से उन्होंने आग्रह किया कि वह शौक्याण-देश जाकर, कँवल को पुनर्जीवित कर लाएँ!

तब कृष्ण बोले—"एक बार तुम्हारे बेटे कंस ने मारे, तब मैं जीवित कर लाया! अब कहाँ-कहाँ तुम्हारे लाड़लों को ढूँढता फिरूँ? मैं द्वारिका का राज-पाट तुम्हारे लाड़लों के पीछे तो चौपट कर नहीं सकता!···"

तब माँ देवकी रानी रुक्मिणी के पास गईं कि "कृष्ण तुम्हारे बुलाए का आने वाला और तुम्हारे लगाए से जाने वाला है! उसे शौक्याण-देश भेजकर, मेरे कँवल को जीवित कर मँगाओ!"

रुक्मिणी बोलीं—"द्वारिका के राजा, भला इस दासी के कहने पर कब सुनते हैं! फिर आप तो यों ही घबरा गई हैं! मैं अपनी साड़ी रँगने के लिए रँग लाई थी, वह आँचल से उस कटोरे में गिर गया था—उसीसे दूध लाल हो गया होगा!"

तब निराश होकर, माँ देवकी ने पाँच भाई पाण्डवों के नाम पाती लिखी कि तुम्हारा लाड़ला साला सूर्य शौक्याण देश में वैरियों को भारी हो गया है, उसे जीवित कर लाओ!

महाराज युधिष्ठिर ने महाबली भीम को शौक्याण देश भेजा कि जाओ, सूर्य को जीवित कर, द्वारिका पहुँचा आओ!

महाबली भीम धरती पर रखकर, आकाश को हिलाते हुए शौक्याण देश की ओर चले। शौक्याण के पहाड़ी रास्तों पर जब उन्होंने अपनी गदा को कंधा बदल-बदलकर ले जाना शुरू किया, तो जिस कंधे पर गदा रखने लगे, उसी ओर का पहाड़ धँसने लगा!

सारे शौक्याण देश में हाहाकार मच गया कि आज 'भूचाल' आ गया है, और शौक-शौक्याणियों ने घबराकर, उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान शुरू किया।

कुमति शौक्याणी ने क्या किया था? सूर्य कँवल को जहर पिला मारा था; नमक के गोठ में डाल दिया था!

महाबली भीम जब शौक्याण पहुँचे, तो देखा, बँधी गाय गोठ में रँभा रही है, पकी रसोई को चील-कौवे लग गए हैं। सारी तल्ली शौक्याण में मनुष्य के नाम की मक्खी का भी पता नहीं है !

अब महाबली भीम को चिंता हुई कि कहाँ और कैसे सूर्य कँवल की अस्थियाँ मिलेंगी ? इसी चिंता में, एक छायादार वृक्ष के नीचे सिलंग-चबूतरे पर बैठे-बैठे ही, भीम स्वप्न-लीन हो गए।

स्वप्न में उन्होंने सूर्य कँवल को देखा, और सूर्य कँवल ने बताया कि कुमति शौक्याणी की गोठ में मेरी अस्थियाँ पड़ी हुई हैं !

कँवल को विषहर, अमृत सींच महाबली भीम बोले, "अब चलो, कँवल द्वारिका।"

"द्वारिका ?" कँवल बोले--"बिना हिमरथी का डोला साथ लिए, मैं द्वारिका किस मुँह से जाऊँगा ?" और कँवल ने सारी कथा बताई। तब महाबली भीम कँवल को साथ ले, हुण देश की ओर चले।

पहाड़ों को पीस के आटा बनाते-बनाते, कमर-कमर ऊँची बर्फ में चलते-चलते, भीम और कँवल मिन्चियों के देश में पहुँचे।[1]

मिन्चियाँ क्या करती हैं ?

कुसुम-हिंडोल झूलती हैं। कुसुम-शैया रचती हैं। कुसुमों का ओढ़ना, कुसुमों का बिछौना करती हैं कि फूलों से भी अधिक सुगन्धि उनके शरीर से आती है।

महाबली भीम बोले--"कँवल, इस मिन्चियों के देश में एक सहस्र से भी अधिक मिन्चियाँ हैं। सबका डोला हिमरथी नाम से द्वारिका हो चलते हैं। नहीं तो, न जाने हिमरथी किस लोक में रहती है--हम हुण देश की बर्फ में गल-गलकर, अपनी हड्डियाँ भी गँवा देंगे !"

कँवल बोले--"गंगा का नाम देने से हर नदी गंगा नहीं बन जाती; गुलाब का नाम देने से, हर फूल गुलाब का नहीं बन जाता है ! मैं तो बिना हिमरथी का डोला

१. मिन्चि कुमारी को कहते हैं। ऐसी लोकोक्ति है कि उस समय शौक्याण देश में कुमारियों के लिए अलग स्थान होता था, जहाँ वे वसन्तोत्सव मनाती थीं।

लिए, द्वारिका के द्वारपालों को अपना मुँह दिखाऊँगा नहीं !"

महाबली भीम को कँवल की जिद से क्रोध आ गया। बोले--"कृष्ण से लेकर, कँवलों तक---तुम द्वारिका के यादव तो औरतों के नाम पर प्राण देने वाले तिरजाट (त्रियाप्रिय) हो ! चलते हो, तो चलो द्वारिका। मैं तो अपनी हस्तिनापुरी को चला !"

और, कँवल के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही, भीम चले गए। कँवल वैरियों के देश में फिर अकेले रह गए।

× × × ×

सात दिन, सात रात[1] चलके, सूर्य कँवल हुण देश पहुँचे। वैरी हुणियों (हूणों) के देश में गाँव का पधान, परिवार का मुखिया मर जाए--न कोई मुँह बोलता है, न कोई सैन समझता है !

तब कँवल ने क्या किया ! वैरागी मुरली, उदासी नाद को बजाना शुरू किया। वैरागी मुरली का स्वर सारे हुणदेश में गूँजने लगा कि घसियारिनों के हाथ की दराती हाथ ही रह गई और पनिहारिनों का नौल (कुएँ) में डुबाया घड़ा नौल में ही रह गया ! कुमारियों को ससुराल, सुहागिनों को मायके की याद आने लगी।

हूण बधुएँ कपोलों पर हाथ धरे, कहने लगीं--"न जाने आज हुणदेश के पातलों (वनांचलों) में कौन-सा नया पंछी चहक रहा है, कि हम गात का दुलार, सिर का सिंगार विसर गई हैं !"

उत्सुकता वश उस 'नए पंछी' को ढूँढ़ने, हूण-वधुएँ इधर-उधर घूमने लगीं। पर कँवल को मुरली बजाते हुए पकड़ा, सौ वर्ष की बुढ़िया, कुमति शौक्याणी की बहिन, विमति हुणियानी ने। विमति के मुँह में दाँत, शरीर में खून नहीं। एक हाथ से कान खींच के सुनती है, एक हाथ से पलक उठाके देखती है।

कँवल से उसने पूछा, कँवल के हुणदेश आने का कारण। कँवल ने सारी बात बता दी। तब, विमति बुढ़िया के द्वार का पहरुवा, गोद का रोने वाला न रहे--

१. लोक कथाओं के नायक किसी भी मंजिल के लिए ठीक सात दिन, सात रात ही चलते हैं और उनका युद्ध भी हमेशा सात दिन, सात रात ही चलता है।

बोली--"एहो परदेशी, मैं ही हिमरथी हूँ।"

कँवल ने कहा "हिमरथी के दाँत तो, रुक्मिणी भाभी ने, अनार-दानों से बताए थे ?"

विमति बुढ़िया की गोठ का बैल, उस बैल का जोतने वाला मर जाए--बोली--"एहो परदेशी, दाँत सचमुच मेरे अनार-दानों से थे, पर, क्या करूँ, घुन लग गया था। मर जाए इन घुनों[1] को बनाने वाला ब्रह्मा, सारे दाँत घुनों ने उजाड़ दिए !

कँवल बोले--"भाभी रानी रुक्मिणी ने तो हिमरथी की चाल हिरनी-सी बताई थी, तुम तो भैंस की तरह चलती हो ?"

विमति बोली--"एहो परदेशी, पहले मैं चलती थी, हिरनी लजाती थी। लेकिन, जबसे तुम्हें देखा है--सुध-बुध खो बैठी हूँ, सो हिरनी-की चाल भी विसर गई हूँ !"

कँवल बोले--"मेरी भाभी रुक्मिणी कहती थी, हिमरथी की बाईस गज की रेशम-सी मुलायम और भँवराली लटी है ?"

विमति को पालने वाला नरक पड़े--बोली--"एहो परदेशी, जैसी तुम्हारी रुक्मिणी भाभी ने बताई, सचमुच मेरी लटी वैसी ही थी। पर, पर, जूँ बनाने वाले ब्रह्मा का वंश निर्वंश हो जाए--जूँ बहुत पड़ गई थीं, काटती थीं—इसलिए मैंने लम्बी लटी काट दी है !···एहो परदेशी, शंका क्यों करते हो ? मैं देवों के नाम पर पत्थर और पितरों के नाम पर होने वालों की कसम खाके कहती हूँ, मैं ही हिमरथी हूँ ! अब मेरा डोला द्वारिका ले चलो; तुम्हारी मेरी कृष्ण-राधा की-सी जोड़ी द्वारिका में राज रचाएगी, मंगल करेगी ?"

तब कँवल विहँस बोले--"एहो हिमरथी, हमारी द्वारिका में एक तेली है, उसका मगनुवा बैल बूढ़ा हो गया है, और अब तेली के काम का नहीं रह गया। उसको भी फुर्सत है, तुमको भी। तुम दोनों की राधा-कृष्ण की-सी जोड़ी द्वारिका नगरी में खूब राज रचाएगी, खूब मंगल करेगी !"

१. दाँतों में लगने वाले कीड़े।

विमति बुढ़िया कुबानी बोलती, फर्र लौटी चली गई !

× × × ×

अब पहुँची खोजती-खोजती, हिम के श्वेत रथ में सूर्य-सी तपती, हूण-कन्या राजकुमारी हिमरथी !···दोनों की आँखें मिलीं, कि पलकें गिरती नहीं हैं, पलकें उठती नहीं हैं !

हिमरथी के रूप का वर्णन रमौलिया क्या करे ?—कि ब्रह्मा रच के बुढ़ापा विसर गए। दाढ़ी नोचते हैं, आँसू गिरते हैं कि रचने को रच ही दी थी, ब्रह्म-लोक में ही क्यों न रख ली मैंने ? जिसका नाम आते ही, देवताओं के गले में थूक अटकने लगता है, कि जिसको स्पर्श करके जंगल के पवन देवता, नदी के वरुण देवता बहना भूल जाते हैं !···कि जिसकी चर्चा चलने पर, राजा इन्द्र अपनी इन्द्राणी को बालों से फूली, पाँवों से लूली देखते हैं और घायल पंछी-से फड़फड़ाते हैं, रुदन करते हैं !

एहो सुनने वालो, रमौलिया ऐसी रूप की रुपाली हिमरथी का वर्णन क्या करे कि जो हँसती है, तो पच्छिम को जाता सूर्य पर्वत से नीचे कूद पड़ता है, कि पूछूँगा ब्रह्मा से 'एक मैं था, एक दूसरा कौन धरती पर पैदा हो गया ?'···कि जिसके दाँतों को देखकर, अनार के बाहर फूटे दाने अन्दर चले जाते हैं, शरम से, कि जिसकी आँखें देखकर, हिरनियाँ वन के खूँटों से टकरा-टकराकर, अपनी आँखें फोड़ लेती हैं कि कमल का फूल नाल से बाहर नहीं निकलता है।

एहो सुनने वालो, रमौलिया उस 'सुनासार की छड़ी, कन्याली या बुक'-सी (सोने की पतली छड़ी-सी और चाबुक-सी लचीली) हिमरथी के रूप का वर्णन क्या करे कि जिसको तौला फूलों से जाता है, पर जिसके रूप के भार से शेषनाग को एक घड़ी में छत्तीस बार पानी की प्यास लगती है !—कि सुनो हो सुनने वालो, हिमरथी रुपाली (सुन्दरी) जिस घर में बोलती है, गोठ की गाय नहीं रँभाती, गोद का बालक नहीं रोता ! जिस वन में बोलती है, पंछी शरमाकर चहकना, फूल शरमाकर महकना छोड़ देते हैं !

ऐसी हिमरथी बान (रूपसी) को जब कँवल ने देखा, तो खुश हो गए कि रानी

भावी रुक्मिणी देखेंगी, तो शरम से अपने कमरे से बाहर नहीं झाँकेंगी कि घूँघट खोल चलेंगी नहीं, मुँह खोल बोलेंगी नहीं !

हिमरथी भी देखती रह गई, कि आकाश में तो सूर्य रोज ही देखती थी, आज धरती पर देख रही हूँ !

हिमरथी-कँवल क्या मिले, कि एहो सुनने वालो, राधा-कृष्ण, सिया-राम की-सी जोड़ी मिल गई। तीनमुखी शंकर, चौमुखी ब्रह्मा, पंचमुखी विष्णु—एहो महादेवो, कि यह जोड़ी अमर रहे कि जैसे धरती पर गंगा, आकाश में चंदा !

× × × ×

रमौलिया क्या करता है ?

सिर धुनता है, लोट लेता है कि मर जाए सेंतुवा (पालने वाला) लम्ब-खम्ब हुणियों का कि विमति बुढ़िया ने बाएँ वचन, दाएँ सैन सिखा दिए हैं कि द्वारिका का कोई धोबी-कहार, चूड़ी-चमार हमारे हुणदेश की पूनम की उजियाली, भादों की हरि-याली-सी राजकन्या हिमरथी का अपहरण करने आया है !···मर जाए विमति बुढ़िया का पानी देने वाला, कि क्या—बानो बोलती है, क्या विष घोलती है कि—"एहो लम्ब-खम्ब हुणियो, गले में पत्थर बाँधो, काली में डूब मरो ! गले में रमकन-धमकन घण्टियाँ बँधवालो, कि भेड़ बनकर स्याँकुरी-भ्याँकुरी जंगलों में चरो ! कि एहो लम्ब-खम्बो ! कौए बन उड़ जाओ हुणदेश से, कि घर-घर, द्वार-द्वार जूठे टुकड़े चोर-चोरकर पापी पेट भरो ! ···एहो कायर लम्ब-खम्ब हुणियो, अब तुम्हारा इस हुण-देश में जीने का कोई धर्म नहीं रह गया है, कि तुम्हारी राजकन्या को द्वारिका का धोबी-कहार, चूड़ी-चमार ले जा रहा है !"

विमति बुढ़िया की गति में लगने वाला बरतन फूट जाए, गाय मर जाए गो-दान में लगने वाली कि वैरी लम्ब-खम्ब हुणियों को कँवल-हिमरथी के लिए बायाँ कर दिया !

लम्ब-खम्ब हुणिए, दाँत तीखे, पेट रीते करते हैं कि द्वारिका के उस धोबी-कहार, चूड़ी-चमार को बिना दाँत लगाए खाएँगे, बिना पानी पीए पचाएँगे !

हिमरथी क्या कर रही थी ? कँवल को हिम-रथ में बिठा, द्वारिका को जा रही थी कि वैरी लम्ब-खम्ब हुणियों ने भारण-डमरू बजाया। उस भारण-डमरू के नाद से कँवल-हिमरथी चेतनाहीन हो गए। तब, वैरी लम्ब-खम्बों के घर की पधानी अपने हलिया[1] के घर चली जाए—लम्ब-खम्बों ने हिमरथी को तो पकड़ लिया और कँवल को विष-भरी कटारी से अपने हुण-वंश को भारी कर लिया।

× × × ×

माता देवकी का दूध-कटोरा रक्त बन गया। कमल मुर्झाया, काठ बन गया कि द्वारिका में आँख की उजियाली, गोद की हरियाली नहीं रह गई !

अब किसे भेजें हुणदेश ? पाँडवों के यहाँ से पाती पहले ही आ चुकी थी कि आपका कँवल मन का मनचला, ज्ञान का अनढला है। ऐसे जिद्दी से हम क्या बोल कहें, क्या वह सुने ?

माता देवकी ने फिर कृष्ण से कहा, रुक्मिणी जी से कहा, कि एहो, रानी रुक्मिणी की आँखों को अँखौड़ी, दाँतों को दँतौड़ी[2] हो जाए, क्या वैरी वचन बोलती हैं—"सुनिए हो, सास देवकी, न तुम्हें कृष्ण जी की माया-ममता रही, न कभी मेरी —अपना कँवल तुम्हें इतना लाड़ला है कि कँवल को सपने में भी दुःखी देखती हो, तो हाथ का निवाला, लोटे का पानी छोड़ देती हो !···सो, एहो माँजी देवकी—मेरे कृष्णज्यू की अकेली मैं हूँ। उन्हें हुणदेश भेजकर, मैं क्यों बिना काले चरेवा (मंगलसूत्र) और बिना सिंदूर-चूड़ियों की बनूँ कि द्वारिका नगरी में मुझे ठंडी हवा का चलना साँप का फुफकारना, ठंडे पानी का पीना विष का कटोरा बन जाए कि मेरी द्वारिका में मुझे दिन की दुपहरी अमावस की रैन बन जाए !"

माता देवकी वचन सुन खड़ी रह गईं। आकाश को हाथ उठाती हैं, धरती पर लोट लेती हैं कि कौन मेरे कँवल को वैरी हुणियों (हूणों) के देश से अमृत से जिला, फूल-सा खिला लाएगा ?

१. हल जोतने वाला। २. आँख और दाँत की बीमारी।

आँख के आँसू पाँव-तले पहुँच गए हैं कि माँ देवकी के हिया की धड़कन होंठों तक पहुँच गई है !

अन्त को माँ देवकी ने, दूत बुलाया, रमौलगढ़ी को भेजा कि मेरे लाड़ले विदू-सिदू[1] रमौलों से कहो--"माँ देवकी को आज देव-नगरी द्वारिका में सिर को छत्र, पीठ को आधार नहीं रह गया है कि आँख की उजियाली, गोद की हरियाली कँवल मेरा हुणदेश में वैरी हूणियों को प्यारा हो गया है। कँवल को जिला के द्वारिका लाओ !"

दूत ने रमौलगढ़ी की ओर प्रस्थान किया।

× × × ×

सुनो हो, सुनने वालो !

रमौलगढ़ी में महाबली गंग रमौल के अतुल पराक्रमी सिदू और विद्यात्रिशारद विदू बेटे रहते थे कि जिनकी मोहन मुरलियों में नौरस के नाद-स्वर गूँजते थे कि जिनकी भगवा झोली में बावन मसान, चौंसठ जोगनों का वास था !···कि जिनकी जिह्वा में हनुमंता (हनुमान) का जाप रहता था कि जिनकी चुटिया में महामाया का आह्वान, भैरव-भीम की हुंकार का रहना था कि धरती पर फूँक मारें, आकाश को हिलावें कि सूखे को हरा, हरे को कोयला कर दें कि पर्वत को राई, राई को पर्वत कर दें।

--कि संध्या के समय जिनकी वैरागी बाँसुरी क्या बजती है कि राजा इन्द्र का कोठा, कुबेर का परकोटा और पंचनाम देवों का आसन हिलने लगता है !

ऐसे महापराक्रमी और विद्याभंडारी रमौलों ने जब सुना कि हमारे जेठू[2] सूर्य कँवल को हुणियों ने साँस रीता, उमर का बीता बना दिया है, तो बड़े भाई सिदू रमौल बोले--"जिसने कँवल को देख के नजर लगाई होगी, उसकी आँखें न रहने दूँगा कि जिसने कँवल को देख के अंगुली उठाई होगी, उसके हाथ न रहने दूँगा !"

१. लोक-कथाओं में यह उल्लेख मिलता है, कि माँ देवकी को दो लड़कियाँ भी थीं—बड़ी बिजौरा रान सिदू (सिद्ध) रमौल को ब्याही थी और दूसरी सूर्य कुंवरि बाद में विदू (बुद्धि) रमौल को ब्याहीं। २. औरत का बड़ा भाई।

यों प्रतिज्ञा कर, जब सिदू रमौल मुँह को मीठा, माथे को टीका कर जाने लगे, तो रानी बिजौरा क्या वचन बोली--"किसी दिन, रमौलो, तुम बकरियाँ चराने चले जाते हो, किसी दिन तुम काशी-रुद्रप्रयाग की जातुरी (यात्रा) को खैर का झोला, तिमूर का सोटा लेकर चल देते हो। आज बड़े भाग से घर आए हो, घर बसे हो। हुण-देश न जाओ, मेरे स्वामी ! माँ देवकी के सात कँवल हैं ! एक गए से न उनका माथा ठनकेगा, न उनके कानों में भँवरा भनकेगा ! पर, मेरे लोक-परलोक के अकेले तुम हो !"

पर, सिदू रमौल न रुके। तब--रानी बिजौरा की मैत (मायके) का धोबी तिरजाट (औरत का गुलाम) बन जाए !--क्या बाएँ वचन बोली--"कि, एहो रमौलो ! मुँह का वचन ठुकराके जा रहे हो, जाओ ! पर, लौटना मत ! ईश्वर करें, तुम्हें राई का पर्वत, काँटे का त्रिशूल बन जाए !"

× × × ×

सिदू रमौल ने अपने पराक्रम से वैरी हुणियों का नाश किया और कँवल को संजीवनी-विद्या से—पुनर्जीवित कर, हिमरथी के साथ द्वारिका को लौटे !

--पर, औरत का वचन तो नदी-पहाड़ को खा जाता है ! वैरिन रुक्मिणी और बिजौरा रानी के नगर का थानेदार मर जाए ! उनके वचन फल गए कि कँवल और सिदू रमौल को भोजन के नाम पर गदुवा (कद्दू) और पानी के नाम पर कच्यार (गंदा पानी) मिलना मुश्किल हो गया !

सात दिन-सात रात के भूखे-प्यासे कँवल और सिदू रमौल विषौलगढ़ी पहुँचे। रानी विषौला के राज में।

जब प्राण पर-लगे पंछी बनने लगे। अब उड़ूँ-तब उड़ूँ करने लगे, तो सिदू रमौल कँवल को हिमरथी के पहरे पर छोड़ गए और आप नगर की ओर भोजन-पानी की व्यवस्था को चले।

रानी विषौला का लड़िया (लाड़ला) मर जाए !

सिदू रमौल को सैन से देखा, सैन से बुलाया सारी बात पूछकर, बोली--"एहो,

महाबली रमौलो ! बारह बरस में जोगी हरिद्वार जाता है, चने क्या चबाता है, फीका पानी क्या पीता है ? न कभी, न कभी--आज तुम्हारा आना मेरी विषौलगढ़ी में हुआ है ! कैसे रूखा खिलाऊँ, फीका पिलाऊँ !···जरा विश्राम करो।"

रानी बिजौरा की राशि को कौए लग जाएँ कि रानी विषौला ने क्या किया, छत्तीस व्यंजन तैयार किए। बत्तीस में कालकूट विष मिला दिया ! सिदू रमौल को ऊँचे आसन बिठाया, सोने की थाली में परसा।

रमौलिया रबाँकर क्या खनकाए, हुड़क क्या बजाए कि विद्याभंडारी सिदू रमौल बुद्धि विसर गए कि हाथ पसार चार का एक निवाला किया ! पहले ही निवाले में सिर चकरा गया, आँख पथरा गईं। रमौल बोले--"एहो, रानी विषौला ! नमक-मिर्च ज्यादा नहीं है, स्वाद तीता नहीं है --फिर भी न जाने क्यों यह भोजन मुझे रुचता नहीं है ? मैं अब और नहीं खाऊँगा !"

विषौला बोली--"एहो, रमौलो ! सात दिन के भूखे, सात दिन के प्यासे हो। इसीलिए, अन्न लग गया है। अब भी अनखाए, अनपीए उठोगे, तो रमौलगढ़ी में दो भाई रमौलों में से एक ही रह जाएगा !" और जोर से हँस पड़ी। अपने हाथ से निवाला उठाया, रमौल को खिलाया ! दो से तीन, तीन से चार निवाले हुए कि रमौलवंशी महाबली सिदू ऊँचे आसन पर से लुढ़क धरती पर आ गया !

सिदू रमौल को यों विष खिला, रानी विषौला कँवल के पास आई। बावन नखरे, चौंसठ रूप दिखाए !···रमौलिया क्या अपना सिर पत्थर पर पटके, एहो, मर जाए पुरुष जात पैदा करने वाले की गोठ की गाय, गोदी का बालक कि कँवल द्वारिका की बान ढल गया है !

रानी विषौला ने मोहिनी-मंत्र जो मार दिया, कँवल ने क्या किया कि हिमरथी को पकड़, उसी के केशों से, वृक्ष के तने से बाँध दिया। स्वयं रानी विषौला के हाथ की जाँठी, कमर की गाँठी[1] बनकर विषौलगढ़ी चला गया !

---

१. एक मुहावरा। अर्थ—आज्ञाकरी।

उधर बहुत दिन जब बीते और सिदू रमौल न लौटे, तो विदू रमौल ने सुबह का स्नान, संध्या का पूजन किया। आसन बैठे, ध्यान लगाया। फूल पर मंत्र मारा भैरव बुलाए, पाती पर मंत्र मार रमकनी-छमकनी जोगनें बुलाईं कि एहो भैरव ! एहो, जोगनो ! मेरी पीठ का आधार, मरे सिर का छत्र भाई सिदू रमौल किस दिशा, किस नगरी, किस करवट सो गया है कि न आता है, न खबर भेजता है !

भैरव-जोगनों ने दिखाया, कामरूप देश का कंचन-गोला--विदू रमौल क्या देखते हैं, सिदू रमौल का अस्थिपिंजर तो रानी--विषौला की गोठ में हाड़ से मिट्टी बन रहा है और द्वारिका का मनचला कँवल रानी विषौला के पिंजरे का तोता बना हुआ है !···उधर, हूण-कन्या हिमरथी पेड़ से बँधी-बँधी सूख के काठ बन गई है !

--विदू रमौल के लिए पलक गिराने का समय कल्प, पलक उठाने का समय युग बन गया !

× × × ×

विषौलगढ़ी पहुँचकर, रण के बाँके और विद्या के धनी विदू रमौल ने सूर्य-कँवल से कहा--कि, "हिमरथी को छोड़ तुम यहाँ क्यों चले आए ? जाओ, हिमरथी को साथ लेकर द्वारिका जाओ !"

तब सूर्य कँवल बोले--"तुम्हारे मन में पाप आ गया है, रमौल जी ! हिमरथी को लेकर, मैं चला जाऊँ ! और तुम यहाँ विषौलगढ़ी में देव-कन्या विषौला के साथ स्वर्ग-सुख भोगो ?···अरे, हिमरथी को साथ लेकर जाने से तो--मैं एक कुतिया लेकर द्वारिका जाना पसन्द करूँगा !"

विदू रमौल ने सूर्य कँवल की मति विसरी, आँख पथरी देखी--गुरु का ज्ञान जगाया; धूनी का ध्यान लगाया ! मारण-चारण, हाँक-भाग के मंत्र मारे कि सूर्य कँवल पर से रानी विषौला का जादू हटाया !

बाद में, रानी विषौला को पकड़ रमौल अपने साथ ले गए। हिमरथी को मंत्र सींच गात का हरा, प्राण का भरा बनाया। फिर रानी विषौला को उसी वृक्ष से बाँधकर, कँवल-हिमरथी को साथ ले द्वारिका को जब चलने लगे, तो अब सिदू

रमौल की याद आई !

अब रमौल विदू को आकाश-धरती का देखना एक हो गया ! जाकर, विषौला रानी से पूछा कि मेरे बड़े भाई सिदू रमौल की अस्थियाँ कहाँ हैं ?

विषौला रानी बोली--"हिमरथी के साथ मुझे भी द्वारिका ले चलो, तो बताऊँ ? नहीं, तो नहीं !"

अब विदू रमौल बड़ी द्विविधा में पड़े ! विवश होकर, वचन दिया कि ले चलूंगा ! फिर सिदू रमौल को जीवित कर, द्वारिका को चले !

एहो, सुनने वालो !

रमौलों का वंश दूब की जड़ एक हो जाएँ कि हिमरथी के डोले के सँग, विषौला को भी ले जाने का वचन पूरा किया, पर ले गए--कुतिया बनाकर !

× × × ×

हिमरथी का डोला जब द्वारिका पहुँचा--पहला शंख रानी रुक्मिणी ने बजाया, पहला फूल रानी रुक्मिणी ने चढ़ाया--"एहो, मेरे लाड़ले देवर ! तुम धन्य हो कि ऐसी रुपाली-हौंस्पाली (सुंदर और शीलवान) देवरानी मेरे लिए लाए !"

माता देवकी ने कँवल-हिमरथी को गले से लगाया। रमौलों का आदर-सत्कार किया और पूछा--"एहो, विद्याबली रमौलो, तुम दूधों नहाओ, पूतों फलो कि तुमने मेरा कँवल मुझे दिया है ! हिमरथी-सी बहू दी है ! बोलो, इस अहसान के बदले में क्या चाहते हो ?"

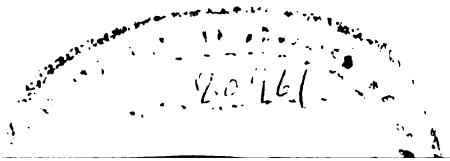

२

विदू-सिदू रमौल और कालू वजीर

रमौल बोले--"हमारे पास, आपके आशीर्वाद से सब-कुछ है !"

माता देवकी बोलीं--"नहीं, आज कुछ अवश्य माँगो तुम ! और ऐसी चीज

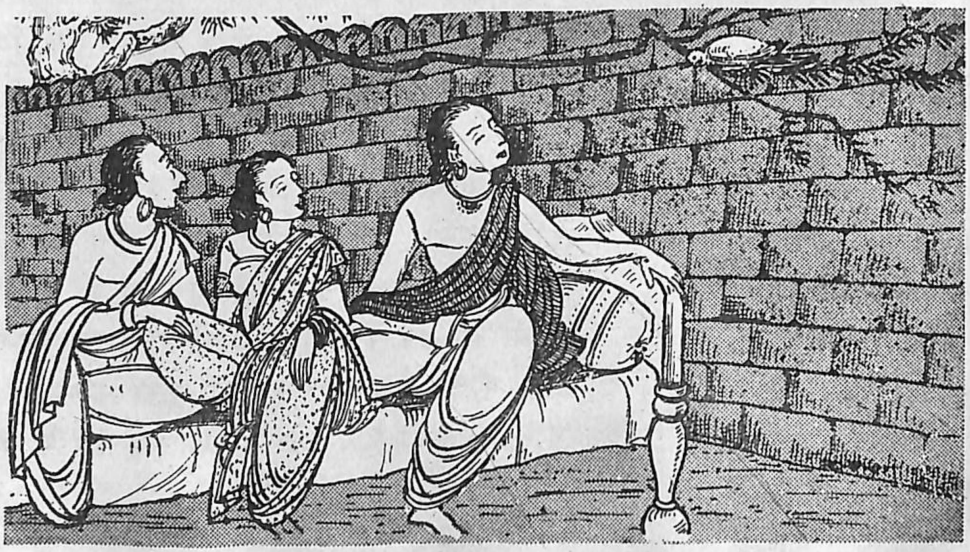

माँगो, जैसी तुम्हारी रमौलगढ़ी में क्या इन्द्र के इन्द्रलोक, ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में भी न हो !

तब विदू रमौल विहँस कर, बोले--"ऐसी चीज है तो सही आपके पास, पर आप देंगी नहीं !"

माता देवकी बोलीं--"एहो रमौलो, तुमने आँखों की उजियाली, गोद की हरियाली--मेरे कँवल को मुझे बख्शा है ! एक वचन, दो वचन--तीसरा वचन देती

हूँ, कि टालूँ तो नरक पड़ूँ !"

तब विदू रमौल बोले--"सुनो हो, सास मेरी देवकी रानीज्यू ! अपनी कन्या सूर्य कुँवरि मुझे दे दो कि जिसको देखने से रात को भी कमल खिलने लगते हैं, कि जैसी रुपाली (रूपवाली) न राजा इन्द्र के इन्द्रलोक में, न ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में !"

वचन देके, हारे कौन ?

माता देवकी ने सूर्य कुँवरि को विदू रमौल को दे दिया ! रमौल सूर्य कुँवरि को साथ ले, चले गए। विदू रमौल ने सूर्य कुँवरि को सिंधुवर्ती द्वीप में रखा। जहाँ हरियाली कभी सूखे नहीं। पवन कभी रुके नहीं।

× × × ×

इधर द्वारिका के नरेश, भगवान् श्रीकृष्ण को जब खबर मिली कि सूर्य कुँवरि को माता देवकी ने विदू रमौल को दे दिया है, तो हाथ हिलाना, वचन बोलना भूल गए --रोष से ! मोर-पंखी मुकुट धरती पर डाल दिया कि मोहन बाँसुरी को चीर-चार कर दिया कि इन रमौलों का नाश कौन करेगा, कैसे करेगा कि मेरी छाती ठंडी होगी, नयन सुख पाएँगे ! मर जाए, इन रमौलों का लाड़ला कि ये भेड़-बकरियों के चराने वाले द्वारिका की राज-कन्याओं को उठा ले जाते हैं !

कहाँ गरड़िए रमौल ? कहाँ द्वारिका-नरेश ?

सूर्य-दीपक की दोस्ती क्या ? शेर-सियार का संग क्या ? पर, माता देवकी और रमौलों के कारण--द्वारिका में मोरनी और गीदड़ का ब्याह हो रहा है। देवताओं को पत्थर, पत्थरों को फूल चढ़ रहे हैं !

अब कैसे रमौलों का नाश हो और कैसे कृष्ण जी का कलेजा ठंडा ? आखिर, रानी रुक्मिणी से मन की व्यथा कही। तब रानी रुक्मिणी क्या वचन बोलीं--"सारी द्वारिका में डुगडुगी फिरवादो, नगाड़े बजवादो कि रमौलगढ़ी के अन्यायी रमौलों को जो कोई वीर मारेगा और रमौलों के सिर काटकर, द्वारिका के द्वार पर लगा जाएगा, उसे कृष्ण भगवान् अपना मित्र बनाएँगे। एक थाली का खिलाएँगे, एक दर्जी का सिया पहनाएँगे !···द्वारिका में एक सिक्का उसका, एक कृष्ण जी का चलेगा !"

कृष्णजी ने रानी रुक्मिणी को गले का हार, हृदय का प्यार दिया कि इस उपाय से कोई-न-कोई रमौलों का सत्यानाशी निकल आएगा और द्वारिका के द्वार पर रमौलों के सिर टाँककर, मेरा कलेजा ठंडा करेगा !

दूसरे ही दिन, सारी द्वारिका में डुगडुगी फिर गई, नगाड़े बज गए, पान के बीड़े रच गए कि कौन माई का लाल, पिता का पूत रमौलगढ़ी के रमौलों के सिर द्वारिका के द्वार पर लगाता है !

× × × ×

पर विद्याबली रमौलों को आँख दिखाने वाला देव-नगरी द्वारिका में कहाँ ? कालीकोट का महाबली योद्धा कालू वजीर अपनी कालीकोट में एक करवट सोता, सौ मन खाता है ! कालू वजीर के डील-डौल का वर्णन रमौलिया क्या करे कि जिनकी दाढ़ी में चील-कौए घोल (घोंसले) लगाए बैठे हैं कि जिसके कानों में शेर-भालुओं का रहना है ! जो मन का गास, सौ मन का आहार करता है। ऐसे महायोद्धा कालू वजीर के पास भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना दूत भेजा--दूत ने काली कोट पहुँचकर, कालीकोट के राजा कालू वजीर की जोहार बजाई, सिर झुकाया।

द्वारिका के दूत ने कालू वजीर को भगवान् श्रीकृष्ण की पाती दी। कालू वजीर पाती बाँचता है, रोष से दाढ़ी नोचता है कि चील-कौए जमीन पर गिरते हैं, कान फड़फड़ाता है, शेर-भालू दम तोड़ते हैं। पाँव आँगन में पटकता है पाथरों का आटा बना देता है ! द्वारिका का दूत थर-थर काँपने लगा कि एक करवट के सोवे, सौ मन के खाने में विघ्न पड़ने से कालीकोट का राजा रोष में आ गया है !

कालू वजीर ने भगवान् श्रीकृष्ण के नाम पाती लिख भेजी--"आज से ठीक आठवें दिन, रमौलों के सिर आपको द्वारिका के द्वार पर मिलेंगे !"

उधर द्वारिका-नरेश ने पाती पढ़ी। द्वारिका में घी के दिए जलवाए, बताश बँटवाए कि आज से आठवें दिन द्वारिका के दुश्मन रमौलों के सिर द्वारिका के द्वार पर टँग जाएँगे। द्वारिका के द्वार पर, कृष्ण जी ने सात हजार नगाड़े, सात हजार तूर्य

रखवा दिए कि जब रमौलों के सिर द्वारिका के द्वार पर लग जाएँ, तब इन्हें बजाया जाए !

× × × ×

उधर सात लाख पैदल, सात लाख घुड़सवारों का दल लेकर, महायोद्धा कालू वजीर रमौलगढ़ी को रवाना हुआ ।

रमौलिया नयन भरता है, आँसू गिराता है कि एहो, सुनने वालो ! इधर वैरी कालू वजीर दाढ़ी से चील-कौओं को भगाता, कान से शेर-भालुओं को भगाता रमौलगढ़ी पर आक्रमण करने जा रहा है और रमौलों की रेख टेढ़ी पड़ गई है कि सूर्य कुँवरि के यहाँ दिशा भूले, राह विसरे निश्चिंत पड़े हैं। लसलसान-चपचपान (सुस्वादु) खाते हैं, कि मनोहर बाँसुरी बजाते हैं और सूर्य कुँवरि को साथ लिए सघन वनांचलों में अपनी बकरियाँ चराते हैं ।

कालू वजीर का सेंतुवा[1] मर जाए कि उसकी जनेऊ पत्थर पर रह जाए, जिसने कालू को जन्माया कि उसकी घाघरी काँटों पर रह जाए कि जिसने उसे भूला भुलाया, दूध पिलाया !

रमौलगढ़ी में रह गए थे, सिर्फ रमौलों, के पिता बूढ़े गंग रमौल, रानी बिजौरा और बालक श्रीनाथ !

रमौलों की रमौलगढ़ी में साल-जमाल बासमती लहरा रही थी, कि मुटकिया-भुनकिया मडुवा लोट ले रहा था । कालू वजीर ने क्या किया कि रात-रात में ही रमौलगढ़ी के लहराते खेतों में अपने सात लाख टापधारी-लापधारी घोड़े छोड़ दिए कि इन घोड़ों पर बैठने वालों की पकाया गास, बिछाया बिछौना देने वाली मर जाए--बासमती को रोंदकर पराल बना दिया, मडुवा का भूसा !

सुबह रमौल-प्रिया बिजौरा जब उठी तो खेतों की ओर नज़र डाली । रुदन मचाती, हाहाकार करती--अंदर आकर, धरती पर लोट लेने लगी; लटें नोचने लगी !

---

१. पालने वाला ।

गंग रमौल ने पूछा--"क्या हुआ, बहू ?"

बिजौरा बोली--"अब खाओगे, मेरे सौर ज्यू[1] ! साल-बासमती का भात ! अब खाओगे, मेरे सौरज्यू ! मडुए की रोटी ! न जाने किस वैरी ने बासमती को पराल, मडुए को नलुवा बना दिया है !"

सौ वर्ष के वृद्ध गंग रमौल की पाँव-तले की धरती खिसक गई। फिर बोले--"ला दे, मेरी बहू, सौ मन का पटेला[2] । ला दे, मेरी बहू, सौ गज के गादे[3] !"

सौ मन के पटेले को गंग रमौल ने अपनी पलकों से बाँधकर, पीठ की ओर लटकाया, तब जाके आँख उघड़ी, कमर सीधी हुई ! फिर सौ-सौ गज के गादे दाएँ-बाएँ कँधों पर लटका उस मुँह-अँधेरे की वेला में ही खेतों की ओर चल दिए।

रमौलगढ़ी की गंगा किनारे जाकर, वृद्ध गंग रमौल ने मन-मन के गंग-लोढ़े बटोरे और उनको गादों में भर एक ऊँचे वृक्ष पर बैठ गए; और सात गज की गुलेल निकाली। उस गुलेल से मन-मन के गंग-लोढ़ कालू वजीर की फौज पर बरसाने लगे। आधा घंटे में ही कालू वजीर की आधी सेना मार डाली। तब कालू वजीर ने बूढ़े गंग रमौल को सौ मन की गदा फेंककर, चिड़िया के बच्चे-सा नीचे गिरा दिया !

तब उधर बालक श्रीनाथ ने माँ से पूछा--"माँ, मेरे दादा गंग रमौल आज कहाँ गए हैं ? क्यों मेरी भुजाएँ फड़कती हैं, क्यों मेरी नसें चटकती हैं ?"

बिजौरा बोली --"लाड़ले, तेरे दादा खेतों के पंछी उड़ाने गए हैं ! रात ठीक से ओढ़ाया नहीं था मैंने तुम्हें, सो शीत से तुम्हारी भुजाएँ काँपती हैं, नसें चट-कती हैं।

और रानी बिजौरा श्रीनाथ का पालना उठा, कोठरी में बन्द कर आई और बाहर से सात साँकलें चढ़ा दीं कि कहीं वैरी कालू वजीर की नज़र मेरे लाड़ले रमौल वंशी पर न पड़ जाए !

पर, बालक श्रीनाथ को कल कहाँ पड़ती ? पालने से उठा, और चला खेतों की ओर। एक ऊँचे टीले पर से देखा--कालू वजीर का लश्कर टिड्डी-दल-सा छाया

१. ससुर जी। २. लोहे का तख्ता। ३. बोरे।

हुआ है ! छोटा-सा, खिलाए से खाने, पिलाए से पीने वाला, बालक श्रीनाथ ढुल-ढुल रो पड़ा कि कहाँ इतना बड़ा लश्कर और कहाँ मैं ?

तब बालक श्रीनाथ ने हाथ जोड़े, नयन मूंदे, पंचनाम देवताओं का नाम लिया; बावन वीर, चौंसठ जोगनों की आराधना की, वीर हनूमंत का जाप किया कि मुझे युद्ध करने की शक्ति दो !

बालक श्रीनाथ के कोमल शरीर में बावन वीर, चौंसठ जोगनों ने अपना बल दिया। वीर हनुमान ने अपनी हुंकार दी कि इधर बालक श्रीनाथ गरजा उधर वैरियों के कलेजे हिल गए !

कालू वजीर ने समझा विदू-सिदू रमौल अब आए हैं ! रण-भेरी बजवादी। बालक श्रीनाथ से लश्कर का युद्ध होने लगा कि आकाश के देवता, पाताल के नाग देखने लगे। बालक श्रीनाथ अपने दादा का बदला लेने के लिए, रण का बाँकुरा, हाँक-मार का हाँकुरा बना, वैरियों को मूली-सा तोड़ता, कद्दू-सा फोड़ता है कि रुण्ड पर मुण्ड नहीं, मुण्ड पर बाल नहीं दिखते।

एहो, सुनने वालो, रमौलों के वंश में काठ-पानी देने वाला न मरे, पराक्रमी बालक श्रीनाथ ने कालू वजीर का सारा लश्कर ही धरती पर बिछौने-सा बिछा दिया !

आकाश के देवता कहते हैं, कि एहो, जैसे कालू वजीर के घोड़ों ने साल-जमाल का पाल बना दिया था, वैसे ही, बालक श्रीनाथ ने कालू वजीर के लश्कर को मिट्टी में मिला दिया है !

तब वैरी कालू वजीर बालक श्रीनाथ पर टूट पड़ा। बालक श्रीनाथ को दूध देने, पालना झुलाने वाली जुग-जुग जिए कि सात दिन, सात रात तक कालू वजीर से लड़ता रहा !

रमौलिया क्या करे, मन-मन के नेत्र बनाए ! ···सातवें दिन, बालक श्रीनाथ की दूध-गली[1] सूख गई। तब निर्दयी कालू वजीर उसे धरती पर पटक, छाती पर बैठ गया कि क्या तू ही विदू रमौल है ?

१. दूधिया-कंठ।

बालक श्रीनाथ हँस दिया ---"जैसे तू मेरी छाती पर चढ़ बैठा है, ऐसे हो जो तेरी छाती पर चढ़ बैठे, समझ लेना, वही विदू रमौल होगा !"

वैरी कालू को काल खा जाए, दोनों हाथों से बालक श्रीनाथ का गला दबा दिया। बालक श्रीनाथ का प्राण-हंस पक्षी बनकर, आकाश में उड़ गया और कफू-कफू' करने लगा !

कफू-कफू करता, बालक श्रीनाथ का प्राण-हंस कफू पक्षी द्रुम-डार, कूल-कछार बयार-साथ घूमने लगा कि किस वन, किस घाटी होंगे, मेरे पिता सिदू रमौल, विदू रमौल !

× × × ×

सूर्य कुँवरि के द्वीप में पहुँचकर, कफू 'कफू-कफू' करने लगा। विदू-सिदू रमौल सूर्य कुँवरि के साथ बैठे थे। कफू बोला--"अब जाओगे, रमौलो ! अपनी रमौलगढ़ी को !···अब खाओगे, रमौलो ! साल-जमाल की बासमती !···अब खाओगे, रमौलो, रानी बिजौरा के हाथ की खीर !···अब देखोगे, रमौलो ! बालक श्रीनाथ का मुँह !"

विदू रमौल सूर्य कुँवरि से बोले--"सुन रही हो, सूर्य कुँवरि ? जरूर हमारी रमौलगढ़ी में किसी वैरी के चरण पड़ गए हैं ! यह पंछी ऐसी वाणी बोल रहा है कि हिया मुँह को आता है, आँसू चरन को जाते हैं !"

सूर्य कुँवरि बोली--"स्वामी, इस सघन वनांचल में हजारों जाति के पंछी रहते हैं। कोई कुछ, कोई कुछ बोलता है ! भला, इसकी बात का भरोसा क्या ?"

पर, विदू का मन न माना। मंत्र पढ़ते हुए, बोला--"तू कौन है, रे वैरी पंछी ? कि कुबानी बोलता है, अपशकुन करता है !"

कफू ने बता दिया, अपना सारा इतिहास और रमौलगढ़ी की दुर्दशा का हाल !

विदू रमौल ने परीक्षा ली और सच पाई कफू की बानी। अमृत सींचकर, बालक श्रीनाथ को फिर पूर्ववत् मनुष्य-चोला दिया और श्रीनाथ को साथ ले, चला रमौलगढ़ी की ओर। जोगी वेष धर, बिजौरा से विद्या का भंडार, जिसे घर पर ही

१. पढ़िए 'कफू' कहानी (कुमायूं की लोक-कथाएँ)।

भूल गए थे, माँगा ।

और युद्ध कर, कालू वजीर को मारा । रानी बिजौरा ने कालू वजीर के रमौल-गढ़ी पर चढ़ाई करने का कारण बताया ।

× × × ×

आठवें दिन द्वारिका के द्वार पर नगाड़े और तूर्य बज उठे । द्वारिका-नरेश श्रीकृष्ण रानी रुक्मिणी को साथ लेकर, आए कि आज वैरी रमौलों के कटे सिर देख-कर, छाती ठण्डी करेंगे ।

पर, जब द्वार पर पहुँचे तो देखा--द्वार पर रमौलों का नहीं, कालू वजीर का सिर टँगा हुआ है !

३

योग-संयोग

दो भाई थे--

बड़े का नाम था, योग ।

छोटे का, संयोग ।

माता-पिता के स्नेहाश्रय से दोनों शैशवावस्था में ही वंचित हो गए थे। पुरखों द्वारा अर्जित सम्पत्ति यथेष्ट थी ।

बड़ा भाई योग लालची था । वह खाने-पीने की चीज़ों में तो अपना हिस्सा

बड़ा करता कि मैं बड़ा भाई हूँ, मुझे अधिक मिलना चाहिए--पर, काम के समय संयोग को ज्यादा दौड़ाता।

योग की स्वार्थी मनोवृति के कारण, संयोग को कष्ट बहुत उठाना पड़ता था। एक दिन संयोग ने योग से कहा कि अब जायदाद का बँटवारा कर लें।

योग ने कोई आपत्ति नहीं की। पर, जब बँटवारा होने लगा, तो बड़ी-बड़ी और कीमती चीजें योग अपने लिए रखने लगा।

संयोग ने आपत्ति की कि बड़े भाई के नाते आपका कर्तव्य था कि मुझे अधिक देते, पर आप तो और गाय से कसाईपना कर रहे हैं। हम दोनों एक पिता के पुत्र हैं, सो पिता की सम्पत्ति पर हम दोनों का अधिकार बराबर है।

पर, योग बोला--"बराबरी का दावा तू कैसे कर सकता है? मैं तुझसे जेठा (ज्येष्ठ) भाई हूँ, मुझे हर चीज़ में जेठांश[1] मिलेगी ही!"

संयोग योग की इस कुटिल मनोवृति से चिढ़ गया। उसने कहा--"तो बड़ भाई तुम थोड़े ही हो, मैं हूं!"

अब योग चकराया!

संयोग स्वस्थ था योग से इसलिए यह निश्चित करना कि कौन बड़ा है, मुश्किल था, अनजानों के लिए। वय में भी संयोग योग से एक ही वर्ष छोटा था!

योग ने कहा, तू झूठ बोलता है, बड़ा तो मैं ही हूँ! तब संयोग ने कहा कि फैसला पंच करेंगे।

मामला पंचायत में गया।

योग ने कहा, "मैं बड़ा हूँ!"

संयोग ने कहा, "मैं बड़ा हूँ!"

पंचों ने कहा कि संयोग, उम्र में तो तुमसे योग ही बड़ा है न?

संयोग ने कहा—"प्रमाणित करना भी आपका कर्तव्य है!"

अब पंचों की बुद्धि चकराई, कि क्या प्रमाण दें, कि योग यों बड़ा है! उन्होंने

१. बड़े होने की लूट।

कहा भी कि इस झगड़े का फैसला तो हमारे वश का रोग नहीं है। चलो, हम सभी पाँच भाई पाण्डवों के दरबार में जाएँ; महाराज युधिष्ठिर की न्याय-प्रणाली निर्दोष और सर्वमान्य है !

योग-संयोग को साथ में ले, पंच लोग इन्द्रप्रस्थ के लिए रवाना हुए। महाराज धर्मराज की राज-सभा में उन्होंने इस समस्या को रखा, तो वे भी चकरा गए, कि यह कैसे सप्रमाण कहा जाए कि योग बड़ा है, या संयोग ?

धर्मराज ने पंचों से कहा--"बन्धुजन, यह सप्रणाण सिद्ध करना कि योग बड़ा है, या संयोग--हमारे लिए मुश्किल है। हाँ, द्वारिका नगरी में हमारे प्रिय सखा कृष्ण रहते हैं, वह सर्वज्ञ हैं--वह ही इसका ठीक-ठीक निर्णय करेंगे।"

अब पाँचों भाई पाण्डव भी साथ हो लिए। योग-संयोग सहित सभी भगवान् कृष्ण की द्वारिका नगरी पहुँचे। भगवान् कृष्ण के समक्ष यह समस्या रखी गई, पर वह भी बोले कि आखिर इसका हम क्या अकाट्य प्रमाण दें कि योग बड़ा है या संयोग! आप लोग कहें, तो हम सभी ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के पास चलें, जन्म-मरण का खाता उन्हीं के पास रहता है; योग-संयोग की जन्म-तिथियों के आधार पर वह सहज ही निर्णय कर सकेंगे कि कौन ज्येष्ठ है, कौन लघु !

पंचों, पाण्डवों और कृष्ण भगवान् सहित योग-संयोग ब्रह्मलोक पहुँचे। भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा जी से कहा--"देव, ये दो भाई हैं---योग और संयोग। योग कहता है, 'मैं बड़ा हूँ !' संयोग कहता है, 'मैं !' आपके यहाँ इन दोनों की जन्म-तिथियाँ होंगी, उन्हें देखकर बताएँ कि कौन अग्रज है, कौन अनुज !"

क्षण-भर सोचने के पश्चात्, ब्रह्मा जी बोले--"भगवन्, इनकी जन्म-तिथियों के अक्षर, उनका लेखन, तभी मिटाए जा चुके, जब ये दोनों पैदा हो चुके। जब ये जन्म ले चुके, तो फिर व्यर्थ ही इनकी जन्म-तिथियों का ब्यौरा क्यों रखा जाए ? हाँ, इनकी मरण-तिथियाँ मेरे यहाँ लिखित हैं। आप चाहें, तो मैं इतना बता सकता हूँ कि पहले कौन मरेगा, बाद में कौन !"

यों समस्या फिर भी उलझी ही रह गई। कृष्ण बोले, "देव, समस्या इनके

मरण-काल की नहीं, जन्म-तिथि की है, ताकि छोटे-बड़े का निर्णय किया जा सके और जायदाद का सही बँटवारा हो सके !"

ब्रह्मा जी ने कहा, कि देवराज इन्द्र के यहाँ चला जाए, तो वह इसका सही-सही निर्णय कर सकेंगे क्योंकि देवलोक की न्यायमूर्ति वह ही हैं।

पंच-पाण्डव-कृष्ण-ब्रह्मा-सहित, योग और संयोग देवराज इन्द्र के दरबार में पहुँचे। देवराज इन्द्र के आगे यह समस्या रखी गई, तो वह बोले--"भगवन्, मैं तो इतना बता सकता हूँ, कि रम्भा अच्छा नाचती है या उर्वशी ? योग-संयोग में कौन बड़ा है, यह जब भगवान् कृष्ण, आप और धर्मराज युधिष्ठिर न तय कर सके, तो मेरी क्या बिसात है ? हाँ, पवनदेव सम्भवतः इसका निर्णय कर सकें--क्योंकि वह सर्वत्र भ्रमण करते हैं, सब-कुछ देखते हैं !"

अब पवनदेव के आगे यह समस्या रखी गई तो वह बोले कि मैं सर्वत्र-सर्व-काल भ्रमण अवश्य करता हूँ, पर मैं जन्म-मरण का बहीखाता कभी भरता तो नहीं !

तब युधिष्ठिर नकुल से बोले--"भैया नकुल, तुमने तो चार वेद, अट्ठारह पुराण पढ़े हैं, तुम ही कुछ कहो !"

नकुल बोले--"इसका निर्णय तो मिथिला-नरेश की धनकुटनी[1] ही कर सकती है--और कोई नहीं ! पर वह धनकुटनी शिव-दर्शन की प्यासी है। वह हमारा कार्य तभी करेगी, जब हम उसे भोलाशंकर के दर्शन कराएँ !"

अंततः कैलाश पर्वत से देवाधिदेव महादेव को साथ ले, मिथिलापुरी पहुँचे !

मिथिलापुरी पहुँचकर, नकुल उस धनकुटनी के पास पहुँचे और उससे कहा कि यदि मेरे कथन के अनुसार कार्य करेगी, तो तुझे भोलाशंकर के दर्शन कराऊँगा। बुढ़िया ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उस बुढ़िया के एक ही पुत्र था। उसकी अवस्था विवाह-योग्य हो चुकी थी। नकुल ने कहा, बुढ़िया से कि तू अपने पुत्र के लिए मिथिला-नरेश की रूपवती-गुणवती राज-कन्या चंद्रावती को माँग ले !

---

१. धान कूटने वाली।

बुढ़िया बोली, "ऐसे भाग मेरे कहाँ ? कहाँ मैं तीन कौड़ी की धनकुटनी, कहाँ मिथिला-नरेश की राज-कन्या !"

नकुल ने कहा, "तू राजा के दरबार में जाना। जब राजा पूछे कि 'किसलिए आई हो ?' तो कहना--'महाराज, मेरी सारी उम्र आपके राज-परिवार के लिए धान कूटते-कूटते व्यतीत हो गई, अब मैं वृद्धा हो चली हूँ, धान कूटने के लिए मूसल उठाने के नाम पर, अपने ही शरीर की मक्खियाँ नहीं उड़ा पाती हूँ, अब अपनी इस अशक्तावस्था में आपसे कुछ माँगने आई हूँ !' राजा दानी है, तुझे माँगने को कहेगा, तब तू पहले वचन ले लेना; वचन दे चुके, तो राज-कन्या चन्द्रावती को माँग लेना !"

बुढ़िया ने नकुल का कहा ही किया और दूसरे दिन, भोर के पंछी चहकते, बाग के फूल महकते ही राज-दरबार जा पहुँची।

राज-दरबार में अपनी धनकुटनी बुढ़िया को देख, राजा विस्मयान्वित हो गए कि आज धनकुटनी बुढ़िया किस प्रयोजन से यहाँ उपस्थित हुई है !

राजा बड़े दयालु थे।

उन्होंने प्रथम-पेशी बुढ़िया की ही लगाई और पूछा--"आर्ये, आज किस प्रयोजन से आप यहाँ आई हैं ?"

बुढ़िया ने कहा--"महाराज, आपके राज-परिवार के लिए धान कूटते-कूटते दाढ़ के दाँत गिर गए, सिर के बाल झड़ गए। नरम रोटी भी पचा नहीं पाती हूँ, कौंली[1] ककड़ी भी चबा नहीं पाती हूँ। आँखों की रोशनी धुरफाट का हौल[2] हो गई है, बाँस की वंशी नज़र आती है ! कण्ठ करड़ा हो गया, मुण्ड धौला ! धान कूटने के लिए, मूसल उठाने के नाम पर, दिशा जाने को जल की बटलोई भी अब उठा नहीं पाती, महाराज ! आप दया-दानी, कोठा[3]-ज्ञानी हैं, अपनी इस जर्जरावस्था में आपसे कुछ माँगने आई हूँ, अन्नदाता !"

राजा ने सोचा, वृद्धा ठीक ही तो कहती है; इसकी सारी उम्र राज-परिवार

१. नरम। २. उपत्यका का कुहरा। ३. सर्वज्ञ।

की सेवा में बीत गई, अब राज्याश्रय इसे मिलना ही चाहिए !

बोले—"माँ, सचमुच ही आपने उम्र-भर राज-परिवार की सेवा की है। आप चिंतित न हों; राज्याश्रय आपको अवश्य मिलेगा। आपके परिश्रम की अवहेलना नहीं की जाएगी। आप क्या चाहती हैं, मुझे बताएँ !"

बुढ़िया बोली—"अन्नदाता, हवा में उड़ा तिनका, मुँह से निकला बोल—बहुत हल्का होता है ! महाराज वचन दें, तो कुछ माँगूँ !"

मिथिला-नरेश ने सोचा, बुढ़िया क्या माँगेगी—धन-धान्य, घर-जमीन ! उन्होंने कहा—"वचन देता हूँ !"

बुढ़िया बोली—"महाराज, अपराध क्षमा करें। एक पूत से वंश चलना कठिन होता है, एक दीपक से उजाला कम होता है; एक हाथ से ताली नहीं बजती—एक बैल से खेत नहीं जुतता !"

बुढ़िया की वाक्-चातुरी पर, नरेश मुस्करा दिए—"अच्छा, एक वचन, दो वचन, तीन वचन—जो वचन टाले, नरक पड़े !"

बुढ़िया बोली—"अन्नदाता, जैसी आपकी चन्द्रावती, ऐसा मेरा लाल ! बस, चन्द्रा को मेरे लाल से ब्याह दो !"

बुढ़िया की माँग सुनकर, राजा के पैरों-तले की धरती खिसक गई। उन्हें रोष आ गया, बोले—"भद्रे, जरा मुँह देखकर बोल निकाला होता; बालक देखकर हिंडोल झुलाया होता ! औकात से बाहर कुछ माँगना तो उचित नहीं ! आपको धन-सम्पत्ति चाहिए, घर-जमीन चाहिए, तो वह माँगिए—मैं मुँह-माँगा दूँगा !"

बुढ़िया बोली—"राजन, देने की सामर्थ्य और निष्ठा न होते हुए भी, किसी को वचन दे देना—दाता की मूर्खता और हृदयहीनता के प्रमाण होते हैं। आपको न करना हो वचन पूरा, न करिए। मैं चली ! मेरा एक पाँव पान,[1] एक पाँव श्मशान है—धन-दौलत क्या छाती पर बाँध के ले जाऊँगी !"

इतना कहकर, बुढ़िया घर लौटने को उद्यत हुई। अब राजा बड़े धर्म-संकट

---

१. घर-भीतर।

में पड़े। वचन-बद्ध हो चुके, तो निभाना ही श्रेयस्कर है--सोचकर, राजा ने वृद्धा को पुकारा--"ठहरो, भद्रे ! अपने वचन के अनुसार, मैं अपनी कन्या चन्द्रावती को आपके लाल से ब्याह दूँगा--पर, मेरी एक शर्त है, वह आपको पूरी करनी होगी ! आपके लाल की बारात स्वर्ण-निर्मित त्रिपुरे आवास से आनी चाहिए, उसमें बाराती त्रिदेव हों; ब्रह्मा वेद पढ़ें, पवन चँवर झुलाएँ, अग्नि रसोईए हों--राजा इन्द्र वर-पिता का स्थान ग्रहण करें, कुबेर कोषाध्यक्ष हों, पाँचों पाण्डव साक्षी रहेंगे--तब चन्द्रावती आपकी बहू बनेगी !"

राजा ने सोचा था, न बुढ़िया ऐसी बारात जुटा पाएगी, न चंद्रावती इस दरिद्र बुढ़िया के बेटे से ब्याही जाएगी !

राजा की शर्त सुन, बुढ़िया घर लौट चली। नकुल से उसने कहा कि राजा मेरे लाल को अपनी चन्द्रावती ब्याहने को प्रस्तुत तो है, पर उसने ऐसी शर्त रखी है, जिसे मैं तो क्या, राजा के लिए होती, तो वह भी पूरी नहीं कर पाता। नकुल के पूछने पर, बुढ़िया ने राजा की शर्त बताई। नकुल बोले, "ऐसा ही होगा।"

दूसरे दिन ही, बुढ़िया के झोंपड़े की जगह स्वर्ण-विहार निर्मित कर दिया विश्वकर्मा ने। विष्णु-अवतार कृष्ण-सहित त्रिदेव थे ही। पवन वर को चँवर झुलाने लगे, देवराज इन्द्र ने वर-पिता का स्थान ग्रहण किया, अग्नि महाराज रसोइए बनकर चले; ब्रह्मा वर-पक्ष के पुरोहित बने--यों पाँचों पाण्डव-सहित लाल की बारात मिथिलानरेश के राज-महल तक पहुँची, तो राजा विस्मय से दुहरे हो गए।

उन्होंने सोचा, जिसमें ऐसी बारात जुटा सकने की सामर्थ्य, उसकी बहू चन्द्रावती बने--यह सौभाग्य ही तो है मेरा। राजा ने सहर्ष चन्द्रावती का हाथ लाल के हाथ में पकड़ा दिया।

राजकन्या चन्द्रावती के धनकुटनी बुढ़िया के दरिद्र लड़के से ब्याहे जाने पर सभी को घोर आश्चर्य हुआ। सभी एक स्वर से बोले, कि धन्य है, संयोग ! तुझसे बड़ा कोई नहीं है। (अर्थात् नहीं तो, कहाँ मिथिला-नरेश और कहाँ धनकुटनी दरिद्र बुढ़िया !)

पाण्डव बोले—"लो, सप्रमाण निर्णय हो गया है, सर्वसम्मति से कि योग से संयोग ही बड़ा है !"

योग चुपचाप घर लौट चला और संयोग से अपनी लालची वृति के लिए क्षमा माँग, सप्रेम साथ रहने लगा ।

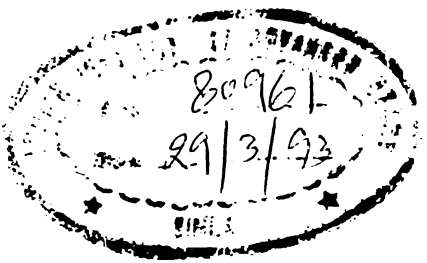

Library IIAS, Shimla
H 398.209541 M 362 T
00080961